|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 6: आत्मसंयमयोग

3/4 (श्लोक 11-27), शनिवार, 04 मार्च 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/gDkgyhOTBho

ध्यान का उद्देश्य और विधि

पारंपरिक रूप से दीप प्रज्वलन और प्रार्थना के साथ विवेचन सत्र का आरंभ हुआ। हमारा यह भाग्य है या फिर हम पर अवश्य ही गुरु कृपा है जो हम भगवद्गीता का अध्ययन, मनन और चिंतन कर रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का यह छठवां अध्याय **आत्मसंयमयोग** बहुत ही महत्त्वपूर्ण अध्याय है।

यह अत्यधिक गूढ़ अध्याय है, इसके पूर्वार्ध में ध्यान के अनेक प्रकार और उनकी धारणाओं का अध्ययन हमने किया। इस अध्याय के सभी श्लोक गूढ़ हैं, रत्नों के भण्डार हैं। इस पर जितना भी चिन्तन करें, हर बार कुछ नया ही प्राप्त होता है। इन श्लोकों में ध्यान योग की विधि और उसकी भौतिक धारणा के बारे में चिंतन किया गया है।

6.11

**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य, स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं(न्) नातिनीचं(ञ्), चैलाजिनकुशोत्तरम्॥11॥**

शुद्ध भूमि पर, (जिस पर क्रमशः) कुश, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, (जो) न अत्यन्त ऊँचा है (और) न अत्यन्त नीचा, (ऐसे) अपने आसन को स्थिर स्थापन करके।

विवेचन : इस श्लोक में ध्यान करने के लिए भूमि का चयन और उसकी तैयारी के बारे में कहा गया है, कि जिस भूमि पर ध्यान करना है वह शुद्ध भूमि हो, जहांँ कोई गंदगी न हो, आसपास स्वच्छता हो, जैसे आंवले या तुलसी के पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान किया जा सकता है। वह स्थान गोबर से लीपा हुआ हो, उस पर एक लकड़ी की चौकी हो और उस चौकी पर कुशा, मृगचर्म और वस्त्र यह तीनों बिछे हुए हों। कुशा अर्थात कुश की पत्ती।

कहा जाता है कि वराह अवतार में विष्णुजी के मुख से कुश की उत्पत्ति हुई थी, यह कुश लकड़ी के समान एक वस्तु होती है जो

थोड़ी सी चुभ सकती है इसलिए उसके ऊपर मृगचर्म का आच्छादन हो। मृगचर्म अर्थात स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त प्राणी का चर्म।

पहले ऋषि मुनि जंगल में ध्यान करते थे। ध्यान हेतु वहाँ पर आसानी से उपलब्ध होने वाली वस्तुओं का ही उपयोग किया जाता था। चर्म की एक विशेषता यह भी है कि वह भूमि से आने वाली विद्‌युत का कुचालक है अर्थात उस विद्‌युत को हमारे शरीर तक नहीं पहुँचने देता। हम सभी जानते हैं कि हमारे शरीर में ऊर्जा का एक सतत् प्रवाह है तो जमीन से आने वाली ऊर्जा और शरीर की ऊर्जा के बीच यह मृगचर्म एक विभाजक की तरह काम करता है। पहले समय में तो इसका उपयोग किया जाता था लेकिन आजकल उसके स्थान पर ऊन से बने आसन का प्रयोग जैसे कंबल आदि का प्रयोग किया जा सकता है। इस ऊनी वस्त्र के ऊपर एक सूती वस्त्र जो चुभने वाला न हो और सुखद अनुभूति देता हो, उसका प्रयोग करना चाहिए। ध्यान के लिए इस तीन परतों वाले आसन की स्थापना करनी होती है।

ध्यान का यह स्थान न तो बहुत ऊँचा हो (जहाँ से गिरने का भय बने) और न ही वह एकदम नीचा हो जहाँ जीव जंतुओं के काटने का भय हो, तो इस प्रकार के आसन की स्थापना ध्यान धारणा के लिए योग्य बताई गई है।

6.12

तत्रैकाग्रं(म्) मनः(ख्) कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्, योगमात्मविशुद्धये॥12॥

उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करे।

विवेचन : इस श्लोक में श्रीभगवान दूसरी महत्त्वपूर्ण बात बताते हैं जो है - ध्यान का प्रयोजन। आजकल हम ध्यान के अनेक उपक्रमों के बारे में सुनते हैं। आजकल ध्यान करने के जो उद्देश्य बताए जाते हैं वे उद्देश्य गीता की धारणा से नहीं मिलते। श्रीमद्भगवद्गीता में तो ध्यान किसी उपलब्धि के लिए नहीं, चक्र जागृति या सिद्धि प्राप्ति के लिए नहीं वरन ध्यान तो आत्म शुद्धि के लिए किया जाना चाहिए, यही एकमात्र लक्ष्य बताया गया है। इसलिए पहले मंजिल को तय करना उचित है। मंजिल ही ठीक नहीं होगी तो हम लक्ष्य तक कैसे पहुँचेंगे।

लक्ष्य तय करने के बाद आती है मन की अवस्था। चित्त को वश में रखकर मन को एकाग्र करने से ही ध्यान किया जा सकता है। ध्यान करते समय पद्मासन, सुखासन या वज्रासन किसी भी आसन में बैठा जा सकता है, बस बात यह है कि जिस आसन में हम पूरे समय बिना अपनी स्थिति को बदले बैठ सकें, वही आसन हमारा सिद्ध आसन है। सिद्ध आसन की बात कहते हुए ऐसा कहा गया है कि जिस अवस्था में हम बिना हिले-डुले तीन घंटे तक बैठ सकते हैं वही हमारे लिए सिद्धासन है, इस आसन की सिद्धता का हमें अभ्यास करना होता है।

6.13

समं(ङ्) कायशिरोग्रीवं(न्), धारयन्नचलं(म्) स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं(म्) स्वं(न्), दिशश्चानवलोकयन्॥13॥

काया, शिर और ग्रीवा को सीधे अचल धारण करके तथा दिशाओं को न देखकर (केवल) अपनी नासिका के अग्रभाग को देखते हुए स्थिर होकर (बैठे)।

विवेचन : ध्यान विधि के अंतर्गत बैठते समय हमारा सिर, गर्दन और काया एक सीधी रेखा में होने पर जोर दिया गया है। इसे साध्य करने के लिए दोनों हाथों की उंगलियों को एक दूसरे में फंसा कर हाथों को सिर के ऊपर खींचकर गर्दन, सिर और काया को स्थिर रखते हुए फिर हाथों को नीचे लाया जाए, तब वे एक सीधी रेखा में स्थिर होते हैं। इस प्रकार स्थिर होकर इस स्थिति में बिना हिले डुले, बिना खाँसें, खँगाले ध्यान के लिए बैठना होता है।

ध्यान करने के लिए नासिका के अग्र पर अपनी दृष्टि को इसलिए जमाना होता है कि इस स्थिति में किसी भी अन्य दिशा में हमारी दृष्टि न जाए। ध्यान तो करना होता है भृकुटि के मध्य में लेकिन दृष्टि को जमाना होता है। नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि को टिकाना यह ध्यान की एक विशिष्ट विधि है।

कुछ अलग विधि भी हो सकती है। कुछ लोग कहते हैं कि आँखें बंद करने पर भी ध्यान किया जा सकता है। लेकिन आँख बंद होने पर विचारों की गति तेज हो जाती है इसलिए नासिकाग्र पर दृष्टि रखते हुए आंख को खुली रखना यह अवस्था उन्मनी अवस्था कहलाती है।

इसके पश्चात मन की पूरी एकाग्रता के साथ मन को पूर्ण रूप से धारणा पर केंद्रित करना होता है।

"जहाँ-2 जाऊँ सोई परिक्रमा, जो कछु करूं सो सेवा।
जब सोउँ तब करूं दंडवत, पूजूँ और न देवा॥"

जीवन में गीता प्रेस के ट्रस्टी श्री जगदीश प्रसाद जलान जी से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। बचपन में हम महीनों महीनों ऋषिकेश जाकर रहते थे। ऋषिकेश में उनका कमरा एक नंबर का था और कमरा नंबर तीन में सत्संग होता था। सत्सङ्ग की व्यवस्था हेतु दिन में दो-तीन बार वे कमरा नंबर एक से तीन तक जाते थे। कई बार हमने देखा कि जाते समय तो वे पीछे की तरफ से जाते थे और वापस लौटते समय गंङ्गा जी के तट की तरफ से लौटते थे। उनसे जब पूछा गया कि ऐसा क्यों करते हैं? क्या इसका कोई विशेष कारण है? तब उन्होंने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही, जो साधना करने की दृष्टि से साधक के लिए अत्यंत उपयोगी है। वे जब कमरा नंबर एक से तीन की ओर जाते थे तो बीच में भगवान लक्ष्मी नारायण का एक मंदिर पड़ता था। वापस लौटते समय वे गंगा तट की तरफ से आते थे तो इस प्रकार आते-जाते मंदिर की परिक्रमा पूरी हो जाती थी। इस तरह दिन में दो तीन बार वे परिक्रमा भी कर लेते थे और गंगा जी के दर्शन भी।

यह दृष्टि महत्त्वपूर्ण है। मैं जो भी करूँ वह भगवान की परिक्रमा के निहित ही हो, यह भाव महत्त्वपूर्ण है।

विवेकानंद जी के गुरु रामकृष्ण परमहंस कैंसर जैसे रोग से पीड़ित थे। लेकिन वे तो एक सहज पुरुष थे, सिद्ध पुरुष थे। कैंसर होने के बाद भी उनकी दैनिक प्रक्रिया बहुत सहज थी। उन्हें केवल तरल पदार्थों पर ही रहना होता था। उनकी जीवनशैली को देखकर विवेकानंद जी को बहुत कष्ट होता था। स्वामीजी उनसे कहते कि गुरु जी आप तो ध्यान लगाकर उसकी शक्ति से, कैंसर को भस्म कर सकते हैं। उनके ऐसा कहने पर ठाकुर जी कहते, मैं जानता हूँ तुम्हारी बात सही है। मैं ध्यान शक्ति से कैंसर को भस्म कर सकता हूँ, लेकिन उस पर ध्यान लगाने के लिए मुझे उस परमात्मा पर लगाए हुए ध्यान को हटाना पड़ेगा जो मुझे स्वीकार नहीं।

इसके बाद ध्यान के लिए जो अत्यंत आवश्यक है वह है - **आत्मशुद्धि** अर्थात मन की शुद्धि। कहते हैं:-

मन के हारे हार है मन के जीते जीत।।

सारी बात मन की है। संतो ने तो कहा है कि मन ही आपके अंतरंग का दर्पण है। किसी का मन जानने के लिए उसके मुख को इस दर्पण में देखें। अपने मन में भी झांकना हो तो इसी दर्पण का प्रयोग हो। कुछ लोग अपने मनोभावों को छुपाकर रहते हैं। उनके मन में कोई बात होती है और वह दिखाते कुछ और हैं। ऐसे लोगों को असहज या कपटी कहा जाता है। सीधा सरल और सहज मन जिसका हो वह उसके चेहरे पर ही दिखता है और तब हम कहते हैं कि यह आदमी स्वच्छ और निष्कपट आदमी है।

निरमल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।

श्री रामचरितमानस की यह चौपाई यह संकेत कर रही है कि ईश्वर या उनकी भक्ति प्राप्त करने के लिए मन की निर्मलता परमावश्यक है। ईश्वर को छल-कपट आदि दोष नहीं भाता क्योंकि जो सर्वज्ञ है उससे छिपाव अर्थात आप ईश्वर को ईश्वर समझ ही नहीं रहे हैं।

कुछ लोग अपने मन को देखकर भी उसकी ओर विमुख रहते हैं। मन तो उन्हें बहलाता है लेकिन वे भी मन की बात को ही मान लेते हैं। जिसका दर्पण जितना झूठा उतनी उसकी तकलीफ अधिक, इसी संदर्भ मे एक सुंदर गीत गाया गया:-

गीत का लिंक-

https://drive.google.com/open?d=1ESRRKUPzVpnaM5KvJiAg--qz3s73otS8&authuser=gitaparivar%40gmail....
मन ही देवता, मन ही ईश्वर है। वही ईश्वरत्व प्राप्त करता है जिसके मन में उजाला होता है और वही उस उजाले को फैलाता भी है। इसलिए सबसे महत्त्वपूर्ण है, मन को शुद्ध करना। कई बार हम देखते हैं कि घंटों तक ध्यान पूजा या जप करने वाले लोग होते हैं लेकिन उन्हें जीवन में आध्यात्मिक रूप से कोई उपलब्धि नहीं होती। इसका कारण है आत्म शुद्धि की कमी।

6.14

प्रशान्तात्मा विगतभीः(र्), ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः(स्) संयम्य मच्चित्तो, युक्त आसीत मत्परः॥14॥

जिसका अन्तःकरण शान्त है, जो भयरहित है और जो ब्रह्मचारिव्रत में स्थित है, (ऐसा) सावधान ध्यान-योगी मन का संयम करके मेरे में चित्त लगाता हुआ मेरे परायण होकर बैठे।

विवेचन : प्रशांत अर्थात् शान्ति का अंत न हो। ऐसे योगी तो इसी प्रकार प्रशांत मन के साथ ध्यान करते हैं।

6.15

युञ्जन्नेवं(म्) सदात्मानं(म्), योगी नियतमानसः।
शान्तिं(न्) निर्वाणपरमां(म्), मत्संस्थामधिगच्छति॥15॥

वश में किये हुए मन वाला योगी मन को इस तरह से सदा (परमात्मा में) लगाता हुआ मुझमें सम्यक् स्थिति वाली (जो) निर्वाण परमा शान्ति है, (उसको) प्राप्त हो जाता है।

विवेचन : मन को वश में करने वाला योगी ही उस उच्चतम शिखर को अर्थात परमानंद की पराकाष्ठा को और शांति को प्राप्त करता है, लेकिन इसके लिए कुछ शर्तें हैं। किसका ध्यान सिद्धता को पाता है और किसका ध्यान सिद्ध नहीं होता इस संबंध में कुछ शर्तें लागू होती हैं।

6.16, 6.17

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन॥16॥
युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥17॥

हे अर्जुन ! (यह) योग न तो अधिक खाने वाले का और न बिलकुल न खाने वाले का तथा न अधिक सोने वाले का और न (बिलकुल) न सोने वाले का ही सिद्ध होता है।
दुःखों का नाश करने वाला योग (तो) यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का (तथा) यथायोग्य सोने और जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

विवेचन : युक्त आहार(अर्थात न तो अधिक और न ही कम खाना) तथा युक्त विहार करने वालों का योग ही सिद्ध होता है।

न अधिक, न कम इसे ही **यथायोग्य चेष्टा** कहा जाता है। जीवन में युक्त आहार, युक्त विहार और युक्त चेष्टा यही सूत्र है। कब कितना खाना है, क्या अथवा क्या नहीं खाना है, पसंद अथवा नापसंद की बात करनी है या नहीं, इसे समझना ही यथायोग्य चेष्टा करना है। स्वाद का आग्रही व्यक्ति ध्यान नहीं कर सकता।

6.18

यदा विनियतं(ञ्) चित्तम्, आत्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः(स्) सर्वकामेभ्यो, युक्त इत्युच्यते तदा॥18॥

वश में किया हुआ चित्त जिस काल में अपने स्वरूप में ही स्थित हो जाता है (और) (स्वयं) सम्पूर्ण पदार्थों से निःस्पृह (हो जाता है), उस काल में (वह) योगी है - ऐसा कहा जाता है।

विवेचन : इस प्रकार योग के अभ्यास से वश में किया हुआ चित्त जिस काल में अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है, वह उस काल में सम्पूर्ण भोगों और इच्छाओं से मुक्त हो जाता है।

6.19

यथा दीपो निवातस्थो, नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य, युञ्जतो योगमात्मनः॥19॥

जैसे स्पन्दन रहित वायु के स्थान में स्थित दीपक की लौ चेष्टा रहित हो जाती है, योग का अभ्यास करते हुए वश में किए हुए चित्त वाले योगी के चित्त की वैसी ही उपमा कही गयी है।

6.20

यत्रोपरमते चित्तं(न्), निरुद्धं(म्) योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं(म्), पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥20॥

योग का सेवन करने से जिस अवस्था में निरुद्ध चित्त उपराम हो जाता है तथा जिस अवस्था में (स्वयं) अपने आप से अपने आपको देखता हुआ अपने आप में ही सन्तुष्ट हो जाता है।

विवेचन : इस श्लोक में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात सुंदर उदाहरण के साथ कहीं गई है। हम देखते हैं कि जब दीप जलाया जाता है तो उसकी लौ अस्थिर होती है। नवरात्रि या किसी अन्य अवसर पर जब दीप प्रज्वलन का अनुष्ठान किया जाता है तब उस लौ पर एक काँच का आवरण रख देते हैं जिससे अगल-बगल की वायु का स्पर्श उसे न हो।आवरण रखने से वह लौ अचल हो जाती है, स्थिर हो जाती है। यही सूत्र है ध्यान करने का, जहाँ आसपास के वातावरण का कोई प्रभाव न हो। ऐसी स्थिति और ऐसा स्थान ही ध्यान के लिए योग्य है।

दो तरह की धाराएं होती है **जलधारा और तैलधारा।** एक पात्र में हम जल लेकर ऊँचाई से जब उसे गिराते हैं तो जल की धारा फैल जाती है, सामान्य आदमी का ध्यान इसी जलधारा की तरह होता है- फैलने वाला या भटकने वाला जबकि योगी का ध्यान तैल धारा की तरह होता है इस धारा को कितनी भी ऊंचाई से गिराया जाए वह नीचे पहुँचने तक एक ही धार के रूप में रहती है। पतंजलि चित्त की छ: अवस्थाएं बताते हुए एकाग्र अवस्था पर जोर देते हैं।

इस संदर्भ में दत्तात्रेय भगवान का एक प्रसंग है। हम जानते हैं कि दत्तात्रेय भगवान के अनेकों गुरु थे अर्थात उन्होंने अलग-अलग लोगों से जीवन के सूत्र सीखे थे। एक बार दत्तात्रेय भगवान किसी सड़क पर खड़े थे। उसके पास ही एक लोहार तल्लीनता से लोहे को पीट-पीटकर तलवार बना रहा था। थोड़ी ही देर में उस मार्ग से राजा की सवारी निकली, बिल्कुल बारात की तरह का वातावरण था, भीड़-भाड़, ढोल-नगाड़ों की आवाज। लेकिन इस शोर-शराबे में भी वह लोहार तो अपने काम में ही पूरी तरह मग्न था। कुछ समय बाद बारात के निकल जाने पर एक आदमी दौड़ता-दौड़ता आया और लुहार से पूछने लगा कि वह बारात किस ओर गई है? तब अचानक अपना काम रोककर लोहार बोला, "कौन सी बारात?" तब वह आदमी आश्चर्यचकित हो गया कि अभी-अभी इतनी बड़ी बारात यहाँ से गई है और तुम्हें पता भी नहीं। यह दृश्य देखकर दत्तात्रेय भगवान ने उस लोहार को दंडवत प्रणाम किया और कहा कि आज से तुम मेरे गुरु हो। एकाग्रता क्या होती है, यह तुमने आज मुझे सिखाया है।

यह एकाग्रता अर्थात मन की स्थिरता चित्त को निरुद्ध करती है तभी हम ध्यान से समाधि की अवस्था में जा पाते हैं।

6.21

सुखमात्यन्तिकं(म्) यत्तद्, बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं(म्), स्थितश्चलति तत्त्वतः॥21॥

जो सुख आत्यन्तिक, अतीन्द्रिय (और) बुद्धिग्राह्य है, उस सुखका जिस अवस्था में अनुभव करता है और (जिस सुख में) स्थित हुआ यह ध्यानयोगी तत्त्व से फिर (कभी) विचलित नहीं होता।

विवेचन : इस श्लोक में भगवान ने पहली बार सुख शब्द का प्रयोग किया और बताया कि इस सुख और आनंद के चार प्रकार होते हैं -

१) विषयानन्द : कर्मेंद्रियों का आनंद-

जलेबी खाई; अच्छी लगी - रसानन्द
संगीत सुना; आनंद आया - कर्णान्द
सुंदर दृश्य देखा; खुश हुए - चक्षु- आनन्द
कोई अच्छी चीज छू ली - स्पर्श-आनन्द
बहुत अच्छी सुगंध आई - घ्राण-आनन्द
ये सभी आनन्द कर्मेंद्रियों के आनन्द हैं जो सुख की श्रेणी में सबसे निम्न स्तर के सुख हैं।

२) वासनानन्द : इंद्रियों के साथ मन जुड़ने पर होने वाला आनन्द-

कोई बड़ी सी कोठी देखी - ऐसी कोठी मेरी हो जाए, किसी के घर बड़ा टीवी देखा - ऐसा टीवी तो मेरे घर भी हो, घर के सामने खड़ी लंबी गाड़ी देखी तो हाय! यह गाड़ी मेरे पास भी हो, सोचने में ही आनंद आता है, यह वासनानंद है।

एक सुंदर कविता की दो अति सुंदर पंक्तियां हैं -

क्यों कल्पना खुशी की, खुशी से ज्यादा खुशी देती है।

क्यों सामने की खुशी, मुट्ठी से रेत की तरह निकल जाती है।।

विचार करने वाली बात है। जीवन में जितना सुख है वह सुख की कल्पना में ही है। ऐसा सुख अलग ही प्रकार का सुख है। घर खरीदने की हम कोशिश करते हैं। घर को खरीदने से लेकर गृह प्रवेश तक का समय बहुत सुख में बीतता है, लेकिन एक बार घर में प्रवेश कर लिया तो वह सुख चला गया। इसी प्रकार किसी वस्तु को ऑनलाइन ऑर्डर करने के बाद उसकी प्रतीक्षा का जो सुख होता है, वह अनोखा है। पर वह सुख वस्तु के आने तक ही टिकता है, उसके बाद सब कुछ सामान्य हो जाता है। बालक को परीक्षा के बाद पिता जी से साइकिल मिलेगी, इस बात की खुशी साइकिल मिलने तक ही होती है। इस सुख की प्रतीक्षा में मन वासनाओं का जो आनंद लेता है वह आनंद विचित्र है। विषय वासनाओं के साथ मन के जुड़ जाने पर होने वाला यह आनंद ही वासनानन्द है।

३) सुषुप्तानन्द: तीसरे प्रकार का आनंद **सुषुप्ति अवस्था का आनंद** है। गाढ़ी और गहरी नींद की अवस्था सुषुप्तावस्था है। कभी-कभी हम कहते हैं आज तो मैं घोड़े बेचकर सोया, समय का पता ही नहीं चला आदि। यह सुख और यह आनंद मन के शांत होने पर ही मिलता है और यह पहले दोनों आनन्दों से उच्च स्तर का सुख है।

४) परमानन्द : इस आनंद को सब आनन्दों का स्वामी और सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। योगी जब अंतर्मुख होकर चेतना का अनुभव करने लगते हैं तब होता है परमानन्द। साधारण लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। कोई संत महात्मा या गुरु हमारे शहर या हमारे घर आते हैं तो हम उनकी व्यवस्था हेतु बहुत कुछ करते हैं और फिर पाते हैं कि उनके मुख से "अच्छा लगा" यह शब्द भी नहीं निकलता, हम घंटों तैयारी करते हैं लेकिन उन विषय सुखों में योगी का मन नहीं लगता, वे तो परमानन्द में ही लग गए होते हैं।

कभी किसी दिन हमें किसी बड़ी पार्टी में जाना होता है तो घर में खेल रहे एक बच्चे से हम जब कहते हैं कि चलो पार्टी में चलने के लिए जल्दी तैयार हो जाओ, पार्टी में जाकर बड़ा आनंद आएगा। परंतु मोबाइल से खेल रहा वह बच्चा उसी खेल में व्यस्त रहता है, उसे वही अच्छा लगता है। वह कहता है कि पार्टी में जाने की मेरी बिल्कुल भी इच्छा नहीं है। हम उसे नहीं समझा पाते कि पार्टी का आनंद इससे अधिक है। संत महात्माओं के आगे हम इसी छोटे बच्चे की तरह हैं। वह तो हमें परमानन्द देना चाहते हैं लेकिन हम विषयानंद में ही मगन रहते हैं और विषयों को ही छोड़ नहीं पाते तो उस परमानन्द तक कैसे पहुँच पाएंगें।

6.22

यं(म्) लब्ध्वा चापरं(म्) लाभं(म्), मन्यते नाधिकं(न्) ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन, गुरुणापि विचाल्यते॥22॥

जिस लाभ की प्राप्ति होने पर उससे अधिक कोई दूसरा (लाभ) (उसके) मानने में भी नहीं आता और जिसमें स्थित होने पर (वह) बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं किया जा सकता।

विवेचन : संसार में जो भी लाभ हम प्राप्त कर लेते हैं उसके पश्चात और अधिक लाभ प्राप्त होने पर हम उस ओर चले जाते हैं, किन्तु योगी आत्यन्तिक सुख को प्राप्त करने के पश्चात विषम परिस्थिति आने पर भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होते। वे ईश्वर प्राप्ति के स्वत:सिद्ध अविनाशी सुख में तल्लीन रहते हैं। हम अज्ञानी बालक के खिलौने में फँसे होने की भाँति ही सांसारिक कर्मों में फँसे रहते हैं। भगवान की ओर अभिमुख नहीं होते।

6.23

तं(म्) विद्याद् दुःखसंयोग, वियोगं(म्) योगसञ्ज्ञितम्।

स निश्चयेन योक्तव्यो, योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥23॥

जिसमें दुःखों के संयोग का ही वियोग है, उसी को 'योग' नाम से जानना चाहिये। (वह योग जिस ध्यानयोग का लक्ष्य है,) उस ध्यानयोग का अभ्यास न उकताये हुए चित्त से निश्चयपूर्वक करना चाहिये।

विवेचन : 'दु:ख-संयोग-वियोग', अर्थात संसार का संयोग दु:ख रूप ही है। हम समझते हैं कि सारा सुख इस संसार में है, सांसारिक कार्यों में है लेकिन यह संसार तो दु:खालय है। हमारे लिए यह दुविधा है कि हम संसार की आसक्ति को छोड़ना नहीं चाहते और दुःखों से छुटकारा पाना चाहते हैं तो यह कैसे होगा?

इसे एक उदाहरण से समझते हैं।
एक युवा लड़की किसी पार्टी में जाने के लिए एक ड्रेस ऑनलाइन आर्डर करती है, वह ड्रेस आ जाती है। पार्टी के समय उसे पहना जाता है, लेकिन पहनते ही उसे ड्रेस चुभने लगती है क्योंकि वह चुभने वाले वस्त्र से बनी होती है। बार-बार उसकी चुभन से लड़की परेशान हो जाती है। उसकी परेशानी को माँ देखती है और कहती है कि कुछ और पहन लो। चुभन से छुटकारा चाहिए तो चुभने वाला कपड़ा निकाल दो पर लड़की माँ के इस सुझाव की उपेक्षा करती है और ड्रेस ही पहने रखना चाहती है तो आप बताइए क्या उसे इस चुभन से छुटकारा मिल पाएगा?

यही तो बात है हमें चुभने वाला कपड़ा निकालना नहीं है लेकिन चुभन से छुटकारा पाना है तो यह कैसे संभव है?

दत्तात्रेय भगवान के चौबीस गुरुओं में एक गुरु थी चील। एक बार दत्तात्रेय भगवान ने देखा कि एक चील माँस का एक टुकड़ा लाकर खाने लगी। तभी चीलों का एक झुंड उड़ते हुए वहाँ आया और माँस का टुकड़ा खाती इस चील को चोंच मारने लगा। इस चील ने झगड़ा नहीं किया। वह माँस के उस टुकड़े को छोड़कर उड़ चली। सभी चीलें माँस के उस टुकड़े के लिए झगड़ने लगीं लेकिन यह चील तो टुकड़ा छोड़ कर उड़ गई। इस तरह उस चील ने दूसरी चीलों के चोंच मारने के दुःख से छुटकारा पा लिया। दुःख से छुटकारा पाना है तो माँस का टुकड़ा छोड़ना ही पड़ता है। दत्तात्रेय भगवान ने उस चील से एक सीख प्राप्त की और उसे अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया।

संसार के दुःखों से छुटकारा पाना है तो आसक्तियों का त्याग निश्चित रूप से करना ही पड़ेगा।

6.24

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्, त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं(म्), विनियम्य समन्ततः॥24॥

संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं का सर्वथा त्याग करके (और) मन से ही इन्द्रिय-समूह को सभी ओर से हटाकर।

विवेचन : भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! संकल्प से उत्पन्न सभी इच्छाओं का पूर्णरूपेण त्याग कर के इन्द्रियों को सभी सांसारिक विषयों से हटा लेना चाहिए।

6.25

शनैः(श्) शनैरुपरमेद्, बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं(म्) मनः(ख्) कृत्वा, न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥25॥

धैर्ययुक्त बुद्धि के द्वारा (संसार से) धीरे-धीरे उपराम हो जाय (और) मन (बुद्धि) को परमात्मस्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्थापन करके (फिर) कुछ भी चिन्तन न करे।

विवेचन : इस श्लोक में श्रीभगवान अभ्यास के द्वारा ध्यान की अवस्था को प्राप्त करने के बारे में बताते हैं। शनै:-शनै: अर्थात

क्रम-क्रम से किया जाने वाला अभ्यास। ध्यान हेतु यह क्रम बहुत आवश्यक है।

यह क्रम है:-

१) समय का अभ्यास: कुछ भी हो, मैं बीस मिनिट तो ध्यान के लिए बैठूँगा ही, फिर मेरा मन लगे न लगे, मेरा आसन सुखद हो न हो, यही समय का अभ्यास है।

२) एकांत का अभ्यास: एकांत अर्थात विघ्न रहित स्थान, हलचल रहित बिना शोर-शराबे वाला स्थान।

३) बैठने का अभ्यास: शुरू-शुरू में हम एक स्थिति में अधिक समय तक नहीं बैठ पाते। ऐसी अवस्था में भले ही आसन बदलते रहे लेकिन लक्ष्य यही रखें कि बिना स्थिति को बदले हुए बैठने का अभ्यास करें।

४) स्थिरता का अभ्यास: यह अभ्यास है आसन को स्थिर करते हुए कर्मेंद्रियों की स्थिरता का अभ्यास।

५) ज्ञानेंद्रियों की स्थिरता का अभ्यास

६) लक्ष्य की स्थिरता का अभ्यास: इस अभ्यास के लिए हम कोई भी लक्ष्य चुनें, जैसे साकार, सक्रिय, अक्रिय, निःशब्द, नामरूप या ओंकार इत्यादि। एक बार लक्ष्य चुनने के बाद उस पर अपने मन को स्थिर करने का अभ्यास करें।

७) ध्याता- ध्यान- ध्येय की स्थिरता का अभ्यास

कबीरदास जी का एक सुंदर दोहा है: -

तन थिर, मन थिर, वचन थिर, सुरति निरति थिर होय।
कहें कबीर उस पलक को, कल्प न पावै कोय॥

तन, मन और वचन के साथ-साथ जब चित्त की सभी वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं, तब हमें आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। कबीर दास जी कहते हैं कि, आत्म-साक्षात्कार का वह पल युगों में कठिन से मिलता है।

6.26

यतो यतो निश्चरति, मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतद्, आत्मन्येव वशं(न्) नयेत् ॥26॥

(यह) अस्थिर (और) चंचल मन जहाँ-जहाँ विचरण करता है, वहाँ-वहाँ से हटाकर इसको (एक) परमात्मा में ही भली भाँति लगाये।

विवेचन: इस श्लोक में श्रीभगवान अस्थिर, चंचल प्रकृति वाले मन की बात करते हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारा मन स्थिर हो तो हमें जानना होगा कि हमारा मन किन विषयों में लगता है, उन विषयों से मन को हटाना ही धीरे-धीरे मन की स्थिरता को पाना है। मन में बहुत कुछ चल रहा हो तो ध्यान नहीं हो सकता।

स्वामी शरणानंद जी महाराज कहते हैं कि जिसका बिजली का बिल बकाया हो वह भला ध्यान कैसे कर सकता है, क्योंकि अभी उसके मन में बिजली के बिल को जमा करवाने के बारे में विचार निरंतर चलते रहेंगे तो ध्यान लगा पाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

6.27

प्रशान्तमनसं(म्) ह्येनं(म्), योगिनं(म्) सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं(म्), ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥27॥

जिसके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है (तथा) जिसका मन सर्वथा शान्त (निर्मल) हो गया है, (ऐसे) इस ब्रह्मरूप बने हुए योगी को निश्चित ही उत्तम (सात्त्विक) सुख प्राप्त होता है।

विवेचन : यह श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण श्लोक है, हम कह सकते हैं कि यह एक श्लोक उस चाबी की तरह है जो हमारे लिए खजाने का द्वार खोल देती है।

दूसरे अध्याय के छियासठवें श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं-

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।

जिसका मन, इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, ऐसे मनुष्य की व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होती। व्यवसायात्मिका बुद्धि न होने से उसमें कर्त्तव्यपरायणता की भावना नहीं होती। ऐसी भावना न होने से उसको शान्ति नहीं मिलती। फिर शान्ति रहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है

अशांत होने पर कोई सुखी नहीं हो सकता, शांति के बिना कोई सुख नहीं है।

हम आरती गाते हैं - **सुख संपति घर आवे, कष्ट मिटे तन का। ओम जय जगदीश हरे।।**

लेकिन ऐसा होता नहीं। सुख संपत्ति को मांग कर कष्ट मिटते नहीं, शांति आती नहीं। हमें तो मांगना चाहिए **सुख, शांति घर आवे।**

भगवान यहाँ उत्तम सुख की बात करते हैं। पदार्थों का सुख तो क्षणिक सुख होता है, खाना, पहनना इसका सुख बहुत क्षणिक है कुछ अंतराल का ही सुख है। हमें किसी यात्रा पर जाना है तो टिकट बनाने तक हम सोचते हैं ऐसा करेंगे वैसा करेंगे, इस कल्पना का सुख ही वास्तव सुख से बड़ा हो जाता है, लेकिन इन सब सुखों से ऊपर का सुख है उत्तम सुख।

साधन -साधक- साध्य का एकात्म होना ही उत्तम सुख की ओर जाने का मार्ग है।

साधक अर्थात ब्रह्मभूत साधक।

साधना के तीन प्रकार बताए गए हैं - **प्रशान्तमनसम्, शान्तरजसम्** और **अकल्मषम्** । इन सब का फल अंत में उत्तम सुख है। कामनाओं का अंत तो हमेशा दुःख में ही होता है। ऐसी कोई भी कामना नहीं जिसका अंत सुख हो। हम साधक हैं हमें ब्रह्मभूत होना चाहिए लेकिन चेतन तत्त्व जब प्रकृति या पदार्थ के साथ मिल जाता है तब हम ब्रह्मभूत से प्रकृतिभूत जैसी निम्न श्रेणी में आ जाते हैं। इसके विपरीत जब हम वासना या आसक्ति को खत्म करते जाते हैं तो पुनः प्रकृतिभूत से ब्रह्मभूत हो सकते हैं। सिद्ध और योगी पुरुष इसी स्थिति को प्राप्त करते हैं। वासना हमें नहीं पकड़ती, हम वासनाओं को पकड़े रखते हैं। एक खेल होता है जिसमें हम बच्चे का पैर पकड़ते हैं। बच्चा कहता है मैं फँस गया, मेरा पैर फँस गया, तब हम उसका पैर छोड़ देते हैं और वह बच्चा छूट जाता है। यह बात समझ में आए- हम वासना नहीं छोड़ते उसे पकड़े रहते हैं लेकिन **जैसे ही हम वासना को छोड़ना चाहेंगे अपने ब्रह्मभूत स्वरूप को प्राप्त कर पाएंगे।**

साधन तीन हैं - पहला प्रशांतमनसम्। शांत और प्रशांत दो शब्द हैं। जब हम किसी दीवार की नपाई करते हैं तो लंबाई को

चौड़ाई से गुणा करते हैं, फर्श की नपाई भी उसी तरह क्षेत्रफल निकाल कर की जाती है। लेकिन जब हमें कमरे में ए. सी. की हवा की नपाई करनी होती है तब हम लंबाई * चौड़ाई * ऊंचाई अर्थात उसकी घनता को नापते हैं, इसी प्रकार भगवान की बात आने पर आनंदघन को नापा जाए, इसके लिए मन को घनीभूत करना पड़ता है। **शांतता का घनीभूत रूप ही प्रशांतता है, यह अवस्था तात्कालिक नहीं हमेशा के लिए होती है।**

प्रशांतमनसम् अवस्था का उत्तम प्रतीक है हनुमान जी। हनुमान जी समुद्र तट पर बैठे थे, अन्य लोग भी थे। समुद्र को कैसे पार किया जाए इसके बारे में बहुत चर्चा हो रही थी। ऐसा करेंगे तो वैसा होगा, यह कर सकते हैं, वह कर सकते हैं।

ऐसे चर्चा हो रही थी लेकिन हनुमान जी चुप बैठे थे, तब जांबुवंत जी कहते है-
का चुप साधि रहेहु बलवाना। पवन तनय बल पवन समाना।।

ऐसे कहते ही उन्होंने हनुमान जी को मुद्राकार शरीर में देखा

कनक भूधराकर सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा।।

इतने विशाल कि उन्होंने सीधे एक छलांग लगाई और लंका तक पहुँच गए, तीन परीक्षाएं दी और फिर मेघनाद ने उन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया उसे हनुमान जी नष्ट कर सकते थे परंतु बोले मैं कर तो सकता हूँ लेकिन करूँगा नहीं। इसी प्रकार अत्यंत बलवान हनुमान जी राम पुत्र लव-कुश से भी पराजित हो गए, यह है शान्तरजसम्।

संकल्प और विकल्प तो सभी के सामने होते हैं, अज्ञानी हमेशा विकल्प ही ढूंढते रहते हैं जबकि सच्चे ज्ञानी संकल्प पर टिके रहते हैं।

सामान्य स्थिति में शांत और प्रशांत दोनों एक ही लगते हैं, लेकिन उनमें जो अंतर है वह तो विपत्ति के समय ही पता चलता है।

एक कवि कहते हैं -

बारिश ने बता दी दोनों की औकात।
सागर की गहराई और नदियों का उत्पात।।

अर्थात एक समान लगने वाले सागर और नदी विपत्ति के आने पर बता देते हैं कि उन में क्या अंतर है।

दूसरा साधन है शान्तरजसम् की प्राप्ति। इसके लिए अपने अपने कर्त्तव्य कर्म करना, बिना काम नहीं बोलना अर्थात मौन का पालन करना। बिना भूख नहीं खाना, अनावश्यक चेष्टा न करना और दूसरों के काम में हस्तक्षेप से बचना। इन सबके करने से शान्तरजसम् बढ़ता है। सामान्य आदमी तो हर क्षेत्र में हस्तक्षेप करना चाहता है।

तीसरा साधन है अकल्मषम् अर्थात कालिख न लगना, न करने योग्य कामों को न करना। साधु पुरुष अपने आचरण में अकल्मष होते हैं। विधि का पालन तो हम सब कर लेते हैं लेकिन निषिद्ध का त्याग करना अकल्मष होना है। बात पाप-पुण्य की नहीं है, बात व्यवहार के दोष की है। उम्र में बड़े व्यक्ति के कमरे में आते ही हमें उठकर उन्हें स्थान देना चाहिए, घर के बड़े बुजुर्ग व्यक्ति का भोजन न हुआ हो तो हमें भोजन नहीं करना चाहिए आदि-आदि।

इन तीन साधनों को प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही योगी हो सकता है और योगी ही अंतिम परमानंद को प्राप्त करता है। हमें यह समझना होगा कि **सुख में शांति नहीं है परंतु शांति में सुख है, इसलिए शांति को चुनो और सुखी हो जाओ अर्थात जीवन का लक्ष्य शांति की प्राप्ति ही है।**

इसके साथ ही हरि नाम संकीर्तन के पश्चात विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरंभ हुआ।

प्रश्नोत्तर:

प्रश्नकर्ता : आशाराम जी प्रजापति जी

प्रश्न : जब भगवान कहते हैं कि मेरी मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता तब फिर जो लोग व्यभिचार करते हैं उसे कैसे समझा जाए?

उत्तर: हम इस बात का ग़लत अर्थ लगाते हैं। भगवान की मर्जी से नहीं भगवान की शक्ति से इस संसार का सारा काम होता है। जैसे हम अपने बच्चे को पॉकेट मनी देते हैं तब हम तो चाहते हैं कि वह उसका सदुपयोग करें लेकिन उसी समय बच्चे के पास यह स्वातंत्र्य भी होता है कि वह उस पॉकेट मनी का कैसे उपयोग करें। भगवान ने हमें सारी शक्ति दी है। अब हम उसका सदुपयोग करें या दुरुपयोग इसका स्वातंत्र्य भी भगवान ने हमें दिया है। अच्छा करने की सामर्थ्य के साथ दुरुपयोग करने का स्वातंत्र्य हमें मिला है। दुरुपयोग करने पर क्या-क्या हो सकता है यह बात भी भगवान ने बता दी है लेकिन चुनने का स्वातंत्र्य हमें दिया है।

प्रश्नकर्ता : डॉक्टर प्रकाश मोहिनी जी

प्रश्न: छठवें अध्याय के पहले श्लोक में अग्नि के त्याग करने वाले को सन्यासी नहीं माना जाए ऐसा कहा गया है, इसका अर्थ थोड़ा स्पष्ट कीजिए?

उत्तर : यहाँ इसका अर्थ है अग्नि में पका भोजन त्यागने वाला। संन्यासियों की परंपरा में एक परंपरा यह है कि वे बिना पका हुआ अर्थात फल-फूल आदि का ही भोजन करते हैं। यहाँ अर्थ यह है कि केवल अग्नि द्वारा पका हुआ भोजन त्याग देने से ही कोई सन्यासी नहीं हो जाता, केवल हिमालय पर जाकर तपस्या करने से ही कोई सन्यासी नहीं हो जाता, जब तक मन में विषयों की कामना है तब तक केवल क्रियाओं को छोड़ देने मात्र से कोई सन्यासी नहीं हो जाता।

प्रश्नकर्ता: बजरंग जी

प्रश्न: हर पल, हर क्षण, हमेशा हमारे आसपास एवं हृदय में शांति रहे उसके लिए उपाय बताएं?

उत्तर: इसके लिए भोगों से उपरामता आवश्यक है जो अभ्यास और योग के द्वारा ही आती है श्रीभगवान ने भी कहा है-

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

प्रश्नकर्ता: चंद्रहास शर्मा जी

प्रश्न: योग का क्या अर्थ है?

उत्तर: योग का अर्थ है जुड़ना। किसी भी विधि, किसी भी धारणा से परमात्मा से सतत एकाकार हो जाना ही योग है।

प्रश्नकर्ता: सुरेंद्र रस्तोगी जी

प्रश्न: पंद्रहवें अध्याय के सातवें श्लोक में भगवान ने जो कहा और उसके बाद सोलहवें में और सत्रहवें श्लोक में जो कहा उसमें विरोधाभास दिखाई देता है। कृपया स्पष्ट करें?

उत्तर: सागर की बूँद सागर का अंश तो है लेकिन सागर नहीं। मूल अंश का निर्माण कर सकता है परन्तु अंश मूल का निर्माण नहीं कर सकता। परमात्मा जीवात्मा का निर्माण कर सकता है पर जीवात्मा परमात्मा का निर्माण नहीं कर सकती। परमात्मा को पाने के लिए **मैं** का त्याग करना अति आवश्यक है।

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहीं।
प्रेम गली अति सांकरी जामें दो न समाहीं॥

प्रश्नकर्ता: मीनाक्षी सोनी जी

प्रश्न: क्या धारणा के बिना ध्यान संभव है?

उत्तर: धारणा के बिना ध्यान संभव नहीं है। अगर आपको दिल्ली जाना है तो बस ट्रेन या फ्लाइट किसी एक का चुनाव करना अनिवार्य है। हर व्यक्ति का चुनाव उसकी परिस्थितियों के अनुसार भिन्न हो सकता है लेकिन दिल्ली तक पहुँचने के लिए चुनाव करना ही पड़ेगा। इसी तरह ध्यान की अवस्था तक पहुंचने के लिए किसी एक धारणा का आश्रय लेना ही पड़ेगा।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/